

भगवद्गीता में कर्मयोग की दार्शनिक मीमांसा

वीना रानी, सहायक प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, हिसार, हरियाणा

सार (Abstract)

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय दर्शन का वह अद्वितीय ग्रंथ है जिसमें जीवन के व्यावहारिक और आध्यात्मिक द्वंद्वों का समाधान प्रस्तुत किया गया है। कर्मयोग, गीता के केंद्रीय सिद्धांतों में से एक है, जो कर्म को त्यागने के बजाय फलासक्ति के त्याग पर बल देता है। यह विस्तारित अध्ययन गीता में वर्णित कर्मयोग की दार्शनिक संरचना — निष्काम कर्म, स्वधर्म, गुणत्रय-विवेचन, समत्व-बुद्धि, स्थितप्रज्ञता, यज्ञ-भावना तथा ज्ञान-भक्ति के साथ उसके अंतर्संबंध — का गहन विश्लेषण करता है। साथ ही यह तिलक, विवेकानंद, गांधी, राधाकृष्णन तथा योगानंद जैसे विचारकों की व्याख्याओं के आलोक में कर्मयोग की तुलनात्मक और आधुनिक प्रासंगिकता को भी रेखांकित करता है, और अंत में कॉर्पोरेट प्रबंधन, मनोविज्ञान तथा नैतिक दर्शन में इसके समकालीन अनुप्रयोगों की चर्चा करता है।

कुंजी शब्द: कर्मयोग, निष्काम कर्म, स्वधर्म, गुणत्रय, समत्व, स्थितप्रज्ञ, यज्ञ, भगवद्गीता, अनासक्ति

१. प्रस्तावना

महाभारत के भीष्मपर्व में निहित श्रीमद्भगवद्गीता विश्व-साहित्य का वह ग्रंथ है जिसने अठारह अध्यायों और सात सौ श्लोकों में मानव-जीवन की समस्त व्यावहारिक और आध्यात्मिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया है। एक विवेचन के अनुसार गीता महाभारत के भीष्मपर्व के अध्याय २३ से ४० तक संस्कृत में रचित एक दार्शनिक संवाद है, जिसने महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानंद से लेकर एल्डस हक्सले और कार्ल युंग जैसे पश्चिमी विचारकों तक को प्रभावित किया है।

कुरुक्षेत्र के रणभूमि में जब अर्जुन कर्तव्य और मोह के द्वंद्व में विषाद से ग्रस्त हो जाता है, तब भगवान श्रीकृष्ण उसे जिस उपदेश से मार्ग दिखाते हैं, उसका मूल आधार कर्मयोग है। यह ग्रंथ केवल धार्मिक उपदेश नहीं, बल्कि मानव-मनोविज्ञान, नैतिकता, नेतृत्व और भावनात्मक संतुलन का भी गहन अध्ययन प्रस्तुत करता है — यही कारण है कि यह दर्शन, मनोविज्ञान, प्रबंधन तथा नैतिकता जैसे विविध अनुशासनों में समान रूप से प्रासंगिक बना हुआ है।

कर्मयोग का शाब्दिक अर्थ है — कर्म के माध्यम से योग, अर्थात् परमात्मा से जुड़ाव। "कर्म" शब्द का अर्थ है क्रिया या कर्तव्य, जिसमें विचार, वचन और शारीरिक क्रियाएँ तीनों सम्मिलित हैं, जबकि "योग" शब्द जुड़ाव या एकता का द्योतक है — व्यष्टि-आत्मा (जीवात्मा) का समष्टि-चेतना (ब्रह्म) से मिलना। इस प्रकार कर्मयोग का अर्थ हुआ — निष्काम भाव से किए गए कर्म द्वारा परमात्मा से जुड़ना, जिसमें व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन बिना फल की आसक्ति के, दैवीय अर्पण के भाव से करता है।

यह सिद्धांत कर्म-संन्यास (कर्म का त्याग) और कर्म-योग (कर्म में रहते हुए भी अनासक्त रहना) के बीच के भेद को स्पष्ट करता है। गीता स्पष्ट रूप से कर्म-त्याग की अपेक्षा कर्मयोग को श्रेष्ठ बताती है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ (भगवद्गीता २.४७)

यह श्लोक कर्मयोग के सम्पूर्ण दर्शन का सार है — कर्म पर अधिकार है, फल पर नहीं। यह केवल एक धार्मिक निर्देश नहीं, अपितु एक मनोवैज्ञानिक सूत्र भी है, जो कर्ता को परिणाम-केंद्रित चिंता से मुक्त कर वर्तमान कर्म में पूर्ण एकाग्रता की ओर प्रेरित करता है।

१.१ अध्ययन का उद्देश्य और कार्यप्रणाली

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य गीता के कर्मयोग सिद्धांत का बहुआयामी विश्लेषण करना है। इसमें (क) मूल ग्रंथ के श्लोकों का दार्शनिक विवेचन, (ख) परंपरागत भाष्यकारों (शंकराचार्य, रामानुजाचार्य) की संक्षिप्त चर्चा, (ग) आधुनिक विचारकों की व्याख्याओं का तुलनात्मक अध्ययन, तथा (घ) समकालीन जीवन में इसकी प्रासंगिकता — इन चार आयामों को समाहित किया गया है।

२. गीता का ऐतिहासिक एवं दार्शनिक संदर्भ

गीता को उपनिषदों का सार माना जाता है — "सर्वोपनिषदो गावो..." अर्थात् समस्त उपनिषद गौएँ हैं और गीता उनका दुग्ध है। यह वेदांत, सांख्य और योगदर्शन की त्रिवेणी है। कुरुक्षेत्र-संवाद के रूप में प्रस्तुत यह ग्रंथ केवल युद्ध-प्रसंग तक सीमित नहीं, अपितु मानव-मात्र के कर्तव्य-बोध का प्रतीक है।

गीता का दार्शनिक ढाँचा तीन प्रमुख योग-मार्गों — कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग — पर टिका है, जो परस्पर विरोधी नहीं, अपितु एक-दूसरे के पूरक हैं। परंपरागत रूप से आदि शंकराचार्य ने गीता की व्याख्या अद्वैत वेदांत के दृष्टिकोण से करते हुए ज्ञान को मोक्ष का प्रमुख साधन माना और कर्म को ज्ञान-प्राप्ति की पूर्व-तैयारी (चित्त-शुद्धि) के रूप में देखा। इसके विपरीत, लोकमान्य तिलक ने अपनी प्रसिद्ध कृति में यह प्रतिपादित किया कि आदि शंकराचार्य के पश्चात् गीता का जो सामान्य संदेश कर्म-संन्यास के रूप में प्रचलित हो गया था, वह वास्तविक संदेश नहीं है — गीता का वास्तविक और मूल संदेश निष्काम कर्मयोग ही है, कर्म-त्याग नहीं।

आधुनिक शोधकर्ताओं ने भी इस ग्रंथ के मनोवैज्ञानिक और चिकित्सकीय आयामों पर अध्ययन किया है। जैसा कि हाल के एक शोध में बताया गया है, गीता मनुष्य के मनःसंस्थान की व्याख्या करने वाला सर्वांगपूर्ण ग्रंथ है, जिसकी प्रासंगिकता वर्तमान तनावग्रस्त युग में और अधिक बढ़ गई है क्योंकि आज का मानव आंतरिक द्वंद्वों से अशांत है जिसे गीता की सम्पूर्ण मनःचिकित्सा-पद्धति त्रिगुणात्मक (सत्व, रज, तम) आधार पर सुलझाती है।

२.१ गीता की रचना-संरचना

गीता के अठारह अध्यायों को परंपरागत रूप से तीन षट्कों (छह-छह अध्यायों के समूह) में विभक्त किया जाता है:

- **कर्म-षट्क (अध्याय १-६):** इसमें कर्मयोग, समत्व-बुद्धि, स्थितप्रज्ञ की अवस्था और ध्यानयोग का वर्णन है।
- **भक्ति-षट्क (अध्याय ७-१२):** इसमें ईश्वर के स्वरूप, विभूति-योग, विश्वरूप-दर्शन और भक्ति-मार्ग का प्रतिपादन है।
- **ज्ञान-षट्क (अध्याय १३-१८):** इसमें क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग, गुणत्रय-विभाग तथा मोक्ष-संन्यास योग का विवेचन है।

यह त्रिविध विभाजन इस बात का प्रमाण है कि गीता में कर्म, भक्ति और ज्ञान — तीनों मार्ग क्रमिक रूप से और परस्पर-गुंफित रूप में प्रस्तुत किए गए हैं, न कि पृथक-पृथक विकल्पों के रूप में।

३. कर्मयोग की अवधारणा

गीता के अनुसार कर्मयोग वह मार्ग है जिसमें व्यक्ति सांसारिक कर्तव्यों का पालन करते हुए भी आसक्ति-रहित रहता है। एक शोध-अध्ययन इसे इस प्रकार परिभाषित करता है — ईश्वर में निष्ठा रखकर आसक्ति को दूर करके सफलता या असफलता में समान भाव से कर्म करते रहना ही कर्मयोग कहलाता है।

गीता के दूसरे अध्याय में भगवान कहते हैं—

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥ (२.४८)

अर्थात् हे धनञ्जय! आसक्ति त्यागकर, सिद्धि और असिद्धि में समभाव रखते हुए योगस्थ होकर कर्म कर — यही समत्व ही योग कहलाता है।

एक अन्य व्याख्या के अनुसार कर्मयोग हिंदू दर्शन में मोक्ष-प्राप्ति के प्रमुख मार्गों में से एक है, जिसमें व्यक्ति परिणामों के प्रति आसक्ति रखे बिना दूसरों के हित के लिए निःस्वार्थ भाव से कर्म करता है — कर्म का अर्थ क्रिया है और योग का अर्थ दिव्यता से जुड़ाव, इस प्रकार यह व्यक्तिगत अपेक्षाओं से मुक्त होकर निःस्वार्थ सेवा के अभ्यास को दर्शाता है।

३.१ कर्म बनाम अकर्म बनाम विकर्म

गीता के चतुर्थ अध्याय में कर्म की जटिलता को स्पष्ट करते हुए कहा गया है—

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥ (४.१७)

यहाँ कर्म (उचित कर्तव्य), अकर्म (निष्क्रियता का भ्रम) और विकर्म (निषिद्ध कर्म) के भेद को समझना आवश्यक बताया गया है। यह श्लोक इंगित करता है कि कर्म की गति अत्यंत गहन और सूक्ष्म है — बाह्य रूप से निष्क्रिय दिखने वाला व्यक्ति भी मानसिक रूप से कर्मरत हो सकता है, जबकि बाह्य रूप से सक्रिय व्यक्ति आंतरिक रूप से अकर्ता-भाव में स्थित हो सकता है। यही भेद गीता के कर्म-दर्शन को सतही कर्मवाद से अलग करता है और उसे एक सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक सिद्धांत का रूप देता है।

३.२ कर्मयोग की चार आधारभूत विशेषताएँ

गीता में वर्णित कर्मयोग की चार प्रमुख विशेषताओं को निम्न प्रकार रेखांकित किया जा सकता है:

1. **स्वधर्म-पालन:** व्यक्ति को अपनी प्रकृति और सामाजिक भूमिका के अनुरूप कर्तव्य का निर्वहन करना चाहिए।
2. **फलासक्ति का त्याग:** कर्म का परिणाम कर्ता के अधिकार-क्षेत्र में नहीं, अतः उसकी चिंता व्यर्थ है।
3. **समत्व-भाव:** सुख-दुख, लाभ-हानि, जय-पराजय में समान मनःस्थिति बनाए रखना।
4. **यज्ञ-भावना:** प्रत्येक कर्म को व्यक्तिगत उपलब्धि के बजाय सृष्टि-यज्ञ में योगदान के रूप में देखना।

४. निष्काम कर्म का सिद्धांत

निष्काम कर्मयोग गीता का केंद्रीय सूत्र है। एक शोध-पत्र के अनुसार, भगवद्गीता का केंद्रीय सिद्धांत निष्काम कर्मयोग है, जो व्यक्ति को फलासक्ति से मुक्त कर मानसिक शुद्धि प्रदान करता है, और यह ग्रंथ केवल धार्मिक नहीं, अपितु दार्शनिक, नैतिक व मनोवैज्ञानिक आयामों को समाहित करने वाला अलौकिक साहित्य है।

निष्काम कर्म का अर्थ यह नहीं कि कर्म बिना उद्देश्य के किया जाए, अपितु यह है कि कर्म का प्रेरणा-स्रोत फल की लालसा न होकर कर्तव्य-बोध हो। इसी संदर्भ में गीता-विवेचकों ने भेदभाव-रहित कर्म की भावना को रेखांकित किया है — जिस प्रकार जल की धारा प्रत्येक प्राणी की पिपासा शांत करती है और सूर्यदेव भी सबको समान दृष्टि से देखते हैं, उसी प्रकार कर्मयोगी को बिना भेदभाव के कर्तव्य निभाना चाहिए, और कर्मयोग के तीसरे आयाम के रूप में फल की आशा न रखने को स्थापित किया गया है।

अंग्रेजी अनुवाद-परंपरा में इस श्लोक (२.४७) का भाव इस प्रकार व्यक्त किया गया है कि कर्म करने का अधिकार तो व्यक्ति को है, किंतु उसके फल पर कभी नहीं, अतः फल को कर्म का हेतु न बनाया जाए और न ही अकर्म में आसक्ति रखी जाए। एक विश्वकोशीय विवेचन के अनुसार, बिना अपेक्षा, प्रेरणा अथवा परिणाम की चिंता के किया गया आवंटित कार्य मन को शुद्ध करता है और व्यक्ति को क्रमशः तर्क के मूल्य तथा कर्म-त्याग के लाभ को समझने योग्य बनाता है।

लोकमान्य तिलक ने अपने "गीता रहस्य" में इस सिद्धांत को कर्मयोग-शास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित किया। एक अध्ययन के अनुसार तिलक ने गीता की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया कि आदि शंकराचार्य के पश्चात गीता का जो लोकप्रिय संदेश कर्म-संन्यास के रूप में प्रचलित हो गया था, उसके विपरीत वास्तविक संदेश निष्काम कर्मयोग (निःस्वार्थ कर्म) ही है। तिलक की यह पुस्तक मूलतः मराठी में सन् १९१५ में बर्मा (म्यांमार) के मांडले कारागार में लिखी गई थी, जहाँ वे राजनीतिक बंदी के रूप में निरुद्ध थे।

जैसा एक समीक्षा में उल्लेखित है — लोकमान्य तिलक के अनुसार ज्ञान-भक्ति से युक्त कर्मयोग ही गीता का सार है, और कमल-पत्र जल से अस्पर्शित रहता है, उसी प्रकार गीता के उपदेश का अनुसरण करने वाला व्यक्ति पाप से अलिप्त रहता है। तिलक का यह भी दावा था कि संपूर्ण गीता — केवल तीसरे अध्याय तक सीमित नहीं, अपितु सभी अठारह अध्यायों में — निरंतर रूप से कर्मयोग की ही वकालत करती है, यह मान्यता आगे चलकर जी. शंकरसुब्ब अय्यर जैसे विद्वानों के अध्ययन में भी प्रतिध्वनित हुई।

४.१ निष्काम कर्म और आधुनिक जीवन-मनोविज्ञान

निष्काम कर्म का सिद्धांत आधुनिक सकारात्मक मनोविज्ञान (Positive Psychology) की "प्रवाह-अवस्था" (Flow State) की अवधारणा से भी साम्य रखता है, जिसमें व्यक्ति परिणाम की चिंता किए बिना कार्य में पूर्णतः तल्लीन हो जाता है। यद्यपि आधुनिक मनोविज्ञान और गीता का दार्शनिक आधार भिन्न है, किंतु दोनों इस बात पर सहमत हैं कि परिणाम-केंद्रित चिंता कार्य-कुशलता और मानसिक शांति दोनों को क्षति पहुँचाती है।

५. स्वधर्म और कर्तव्य

गीता स्वधर्म-पालन पर विशेष बल देती है—

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥ (३.३५)

अर्थात् गुणरहित होते हुए भी अपना धर्म दूसरे के अच्छे प्रकार अनुष्ठित धर्म से श्रेष्ठ है। स्वधर्म में मृत्यु भी कल्याणकारी है, पर-धर्म भयावह है। यह श्लोक कर्मयोग को व्यक्ति की प्रकृति और सामाजिक भूमिका से जोड़ता है — अर्थात् कर्तव्य सार्वभौमिक नहीं, प्रासंगिक (contextual) होता है।

गीता में स्वधर्म की यह अवधारणा वर्ण-व्यवस्था के ऐतिहासिक संदर्भ से जुड़ी है, जिसकी आधुनिक व्याख्याओं में अक्सर पुनर्विवेचना की जाती है। समकालीन विद्वान इसे जन्म-आधारित वर्ण-व्यवस्था के बजाय गुण-कर्म-आधारित स्वभाव-अनुरूप कर्तव्य-चयन के रूप में देखने का प्रस्ताव देते हैं, जिसमें व्यक्ति अपनी अंतर्निहित प्रकृति (स्वभाव) के अनुरूप कार्यक्षेत्र चुनकर उसमें पूर्ण निष्ठा से संलग्न होता है। यह व्याख्या स्वधर्म को एक गतिशील और व्यक्ति-सापेक्ष सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत करती है, न कि एक स्थिर सामाजिक बंधन के रूप में।

५.१ अर्जुन-विषाद और स्वधर्म का द्वंद्व

अर्जुन का विषाद वास्तव में स्वधर्म और मोह के बीच का द्वंद्व है। पहले अध्याय में अर्जुन कुल-नाश, बंधु-वध और सामाजिक-नैतिक उथल-पुथल की आशंका से ग्रस्त होकर शस्त्र त्यागने का निर्णय लेता है। श्रीकृष्ण का संपूर्ण उपदेश इसी द्वंद्व के समाधान हेतु है — वे अर्जुन को यह नहीं समझाते कि युद्ध करना नैतिक रूप से सरल है, अपितु यह समझाते हैं कि क्षत्रिय-स्वधर्म का त्याग स्वयं में एक बड़ा अनैतिक कृत्य है, क्योंकि यह कर्तव्य-विमुखता और मोहग्रस्त पलायन को जन्म देता है। इस प्रकार गीता का आरंभ ही नैतिक दुविधा (Ethical Dilemma) के समाधान-प्रयास के रूप में होता है, जो इसे आधुनिक नीतिशास्त्र के लिए भी एक महत्वपूर्ण केस-स्टडी बनाता है।

६. त्रिगुण सिद्धांत और कर्म

गीता के चौदहवें अध्याय में सत्व, रज और तम — इन तीन गुणों के आधार पर कर्म के प्रकारों की व्याख्या की गई है। अठारहवें अध्याय में इसी आधार पर कर्म, कर्ता, बुद्धि और सुख का त्रिविध वर्गीकरण प्रस्तुत हुआ है। सात्त्विक कर्म वह है जो कर्तव्य-बुद्धि से, आसक्ति त्यागकर, बिना राग-द्वेष के किया जाए—

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते॥ (१८.२३)

इसके विपरीत, राजसिक कर्म वह है जो अहंकार-युक्त होकर, अत्यंत परिश्रमपूर्वक और फल की कामना से किया जाए; तथा तामसिक कर्म वह है जो परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्य का विचार किए बिना मोहवश आरंभ किया जाए। यह त्रिविध वर्गीकरण न केवल कर्म पर, अपितु कर्ता की बुद्धि, धृति (धैर्य) और सुख की प्रकृति पर भी लागू होता है, जिससे गीता का त्रिगुण-सिद्धांत एक समग्र मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण-पद्धति बन जाता है।

यह त्रिगुणात्मक विश्लेषण ही आधुनिक शोधकर्ताओं द्वारा गीता को मनोवैज्ञानिक चिकित्सा-पद्धति के रूप में देखे जाने का आधार है। त्रिगुण-सिद्धांत को आधुनिक व्यक्तित्व-मनोविज्ञान (Personality Psychology) से जोड़ने के प्रयास भी हुए हैं, जिनमें सत्व को संतुलन और स्पष्टता, रज को महत्वाकांक्षा और बेचैनी, तथा तम को जड़ता और भ्रम से समीकृत किया जाता है।

६.१ गुणातीत अवस्था

गीता चौदहवें अध्याय के अंत में "गुणातीत" पुरुष की अवस्था का वर्णन करती है — वह व्यक्ति जो तीनों गुणों के प्रभाव से ऊपर उठकर साक्षी-भाव में स्थित रहता है, सुख-दुख, निंदा-स्तुति में समान रहता है, और इस प्रकार परम भक्ति का अधिकारी बनता है। यह अवस्था कर्मयोग की चरम परिणति मानी जा सकती है, जहाँ कर्ता कर्म तो करता है, किंतु गुणों की क्रीड़ा को साक्षी-भाव से देखता हुआ उनसे अप्रभावित रहता है।

७. स्थितप्रज्ञ और समत्व-बुद्धि

गीता के दूसरे अध्याय के अंतिम भाग में "स्थितप्रज्ञ" की अवस्था का विस्तृत वर्णन मिलता है, जो कर्मयोगी के आदर्श मानसिक स्वरूप को प्रस्तुत करता है। स्थितप्रज्ञ वह है जो समस्त कामनाओं का त्याग कर आत्मा में ही संतुष्ट रहता है, दुखों में उद्विग्न नहीं होता, सुखों में स्पृहाहित रहता है, तथा राग, भय और क्रोध से मुक्त रहता है।

यह अवस्था कर्मयोग से पृथक् नहीं, अपितु उसका स्वाभाविक परिणाम है। जो व्यक्ति फलासक्ति त्यागकर, समत्व-भाव से कर्म करता है, वह क्रमशः स्थितप्रज्ञता की ओर अग्रसर होता है। समत्व-बुद्धि ही योग है — यह परिभाषा (२.४८) कर्मयोग और स्थितप्रज्ञता को एक ही सूत्र में बाँधती है।

समत्व-बुद्धि की यह अवधारणा गीता के छठे अध्याय में और विस्तार पाती है, जहाँ योगी को मिट्टी के ढेले, पत्थर और सोने में, तथा मित्र, शत्रु, उदासीन, बंधु, साधु और पापी में समान दृष्टि रखने वाला बताया गया है। यह समदर्शिता कर्मयोग की उच्चतम अवस्था का द्योतक है, जहाँ बाह्य द्वंद्वात्मक जगत का प्रभाव आंतरिक शांति पर नहीं पड़ता।

८. यज्ञ-भावना और लोकसंग्रह

गीता के तीसरे अध्याय में कर्म को "यज्ञ" के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। भगवान कहते हैं कि सृष्टि के आरंभ में प्रजापति ने यज्ञ-सहित प्रजा की रचना कर यह उपदेश दिया कि इस यज्ञ द्वारा तुम वृद्धि को प्राप्त करो — यही तुम्हारी कामधेनु सिद्ध होगी। यज्ञ-भावना से किया गया कर्म बंधनकारी नहीं होता, क्योंकि उसमें अहंकार-केंद्रित "मैं करता हूँ" का भाव नहीं, अपितु सृष्टि-चक्र में योगदान का भाव प्रधान रहता है।

इसी संदर्भ में तीसरे अध्याय में "लोकसंग्रह" की अवधारणा भी प्रस्तुत होती है — भगवान स्वयं का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि यद्यपि उन्हें त्रिलोक में कुछ भी प्राप्तव्य नहीं है, फिर भी वे कर्म में प्रवृत्त रहते हैं, क्योंकि यदि वे कर्म न करें तो सामान्य जन भी उनका अनुसरण करते हुए कर्तव्य-विमुख हो जाएँगे, जिससे लोक-व्यवस्था नष्ट हो जाएगी। यह सिद्धांत कर्मयोग को केवल व्यक्तिगत मोक्ष-साधन तक सीमित नहीं रखता, अपितु उसे सामाजिक उत्तरदायित्व और नेतृत्व-दर्शन से भी जोड़ता है — जो उच्च पद पर आसीन व्यक्ति करता है, सामान्य जन उसी का अनुसरण करते हैं, अतः श्रेष्ठ जनों का आदर्श आचरण समाज के लिए मार्गदर्शक बनता है।

९. ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग का समन्वय

गीता में कर्म, ज्ञान और भक्ति — तीनों योग पृथक् नहीं अपितु परस्पर पूरक हैं। जैसा एक समीक्षा में कहा गया है — गीता के अठारह अध्यायों में ज्ञान, भक्ति और कर्म की पावन त्रिवेणी प्रवाहित होती है, जिससे मनुष्य कर्म, स्वधर्म, काम, क्रोध और अहंकार जैसे विषयों का ज्ञान प्राप्त कर मानसिक द्वंद्वों पर विजय पा सकता है।

कर्मयोगी के लिए ज्ञान आवश्यक है ताकि वह आत्मा और शरीर के भेद को समझ सके; भक्ति आवश्यक है ताकि वह कर्म-फल ईश्वर को समर्पित कर सके। इस प्रकार कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का संगम-बिंदु है।

नवें अध्याय में "प्रसाद" की अवधारणा इस समन्वय को और स्पष्ट करती है — एक व्याख्या के अनुसार गीता का नवाँ अध्याय भक्ति-भाव से अर्पित कर्म के फल को प्रसाद के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें दिव्य उपस्थिति की पहचान, कर्मों का समर्पण और दिव्य कृपा के परिवर्तनकारी प्रभाव के अनुभव पर बल दिया गया है, तथा निष्काम कर्म, ज्ञान और भक्ति को परस्पर पूरक साधनाओं के रूप में देखा जाना आवश्यक बताया गया है। इस दृष्टि से कर्मयोग केवल दायित्व-निर्वहन का शुष्क सिद्धांत नहीं, अपितु एक भावनात्मक और आध्यात्मिक रूप से समृद्ध जीवन-पद्धति है, जिसमें प्रत्येक कर्म एक अर्पण-कर्म (Offering) में परिणत हो जाता है।

१.१ बुद्धियोग और मनोनियंत्रण

गीता में "बुद्धियोग" शब्द का भी प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ है बुद्धि द्वारा मन तथा इंद्रियों पर नियंत्रण स्थापित कर कर्म करना। दूसरे अध्याय में भगवान कहते हैं कि बुद्धियुक्त व्यक्ति इस लोक में पुण्य और पाप दोनों को त्याग देता है, अतः योग में प्रवृत्त हो — योग ही कर्मों में कुशलता है। यह श्लोक कर्मयोग की व्यावहारिक कुशलता (Efficiency) से भी जोड़ता है, जिसे आधुनिक प्रबंधन-सिद्धांतों में उद्धृत किया जाता रहा है।

१०. आधुनिक विचारकों की व्याख्याएँ — तुलनात्मक अध्ययन

१०.१ लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

तिलक की "श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य" (गीता रहस्य अथवा कर्मयोग-शास्त्र) सन् १९१५ में प्रकाशित हुई, जब वे मांडले कारागार में बंदी थे। इस ग्रंथ में तिलक ने गीता को कर्म-प्रधान ग्रंथ के रूप में पुनर्स्थापित किया, यह तर्क देते हुए कि शंकराचार्य के पश्चात् प्रचलित कर्म-संन्यास की व्याख्या गीता के मूल आशय के विपरीत है। तिलक का यह ग्रंथ भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान सक्रिय कर्म और राष्ट्र-सेवा को आध्यात्मिक वैधता प्रदान करने वाला महत्वपूर्ण दार्शनिक अवलंब बना।

१०.२ स्वामी विवेकानंद

स्वामी विवेकानंद ने कर्मयोग को "निःस्वार्थ कर्म" के रूप में प्रस्तुत किया, जिसमें फल की आसक्ति के बिना कर्म करने पर बल दिया गया। उनकी व्याख्या के अनुसार कर्मयोग सांसारिक जीवन के सभी कार्यों — कार्य, संबंध, दैनंदिन गतिविधियों — को दिव्यता के प्रति अर्पित करने और उनसे प्राप्त प्रत्येक परिणाम को प्रसाद के रूप में स्वीकार करने की एक आध्यात्मिक पद्धति है। विवेकानंद ने कर्मयोग को केवल वैयक्तिक मुक्ति का साधन न मानकर, राष्ट्र-निर्माण, चरित्र-निर्माण और सामाजिक सेवा (दरिद्र-नारायण सेवा) से जोड़ते हुए इसे एक सक्रिय, कर्मठ राष्ट्रीय चेतना के निर्माण का माध्यम बनाया।

१०.३ महात्मा गांधी

महात्मा गांधी ने गीता पर गुजराती में भाष्य लिखा, जिसे बाद में "अनासक्ति योग" नाम से अंग्रेजी में प्रकाशित किया गया। यह भाष्य सन् १९२६ में साबरमती आश्रम में फरवरी से नवंबर के मध्य दिए गए प्रवचनों पर आधारित है। गांधी के अनुसार उनकी यह व्याख्या सामान्य जन के लिए थी — उस व्यक्ति के लिए जिसके पास न तो साहित्यिक विद्वता है, न मूल संस्कृत ग्रंथ पढ़ने का समय अथवा इच्छा, किंतु जिसे गीता के आलंबन (support) की आवश्यकता है। गांधी ने कर्मयोग को सत्य और अहिंसा के व्यावहारिक जीवन-

दर्शन के रूप में अपनाया, और इसे अपने संपूर्ण राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन का आधार बनाया — सत्याग्रह और अहिंसक प्रतिरोध को उन्होंने निष्काम कर्मयोग के ही व्यावहारिक रूपांतरण के रूप में देखा। गांधी के जीवन और उनकी शिक्षाओं पर गीता के इस प्रभाव का विस्तृत अध्ययन आर.एस. बेताई की पुस्तक "गीता एंड गांधीजी" में भी मिलता है, जिसमें अनासक्तियोग के विश्लेषण सहित गांधी के गीता-व्याख्याकारों में स्थान की चर्चा है।

१०.४ डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने सन् १९४८ में गीता का अंग्रेजी अनुवाद एवं भाष्य प्रकाशित किया, जिसमें उन्होंने गीता को तुलनात्मक दर्शन की दृष्टि से पश्चिमी नैतिक चिंतन के समानांतर रखा। राधाकृष्णन की व्याख्या का महत्व इस बात में है कि उन्होंने गीता के कर्मयोग को केवल भारतीय संदर्भ तक सीमित न रखकर, इसे विश्व-दर्शन की मुख्यधारा में — कांट के कर्तव्य-नीतिशास्त्र (Deontological Ethics) और स्टोइक दर्शन की समभाव-अवधारणा के साथ तुलनात्मक रूप में — प्रस्तुत किया।

१०.५ परमहंस योगानंद

परमहंस योगानंद, जो "ऑटोबायोग्राफी ऑफ ए योगी" के लेखक के रूप में विख्यात हैं, ने गीता की व्याख्या क्रिया-योग और आध्यात्मिक साधना के परिप्रेक्ष्य में की। उनकी व्याख्या गीता के दार्शनिक जटिलताओं को योगिक अभ्यास से जोड़ते हुए ध्यान, निःस्वार्थ सेवा और मुक्ति के मार्ग की एक व्यावहारिक व्याख्या प्रस्तुत करती है, जिसमें आत्मा (जीवात्मा) और परमात्मा (परमात्मा) के बीच के भेद तथा प्रत्येक व्यक्ति में निहित दिव्यता पर विशेष बल दिया गया है।

१०.६ तुलनात्मक सारणी

विचारक	प्रमुख कृति	कर्मयोग की मुख्य व्याख्या
आदि शंकराचार्य	गीता-भाष्य	ज्ञान प्रधान, कर्म चित्त-शुद्धि का साधन
बाल गंगाधर तिलक	गीता रहस्य (१९१५)	निष्काम कर्मयोग ही गीता का सार
स्वामी विवेकानंद	कर्मयोग (प्रवचन-संग्रह)	निःस्वार्थ सेवा, राष्ट्र-निर्माण
महात्मा गांधी	अनासक्ति योग (१९२६)	सत्य-अहिंसा आधारित व्यावहारिक कर्मयोग
सर्वपल्ली राधाकृष्णन	द भगवद्गीता (१९४८)	तुलनात्मक-दार्शनिक, विश्व-नैतिकता से संबंध
परमहंस योगानंद	गीता-भाष्य	क्रिया-योग एवं आध्यात्मिक साधना

११. पश्चिमी नैतिक दर्शन से तुलना

गीता के कर्मयोग सिद्धांत की तुलना अक्सर पश्चिमी दर्शन की कर्तव्य-आधारित नीतिशास्त्र (Deontological Ethics) से की जाती है, विशेषतः इमैनुएल कांट के "कर्तव्य के लिए कर्तव्य" (Duty for Duty's Sake) सिद्धांत से। दोनों में परिणाम की अपेक्षा कर्तव्य-पालन की शुद्धता पर बल दिया गया है, यद्यपि कांट का सिद्धांत विशुद्ध बौद्धिक तर्क पर आधारित है जबकि गीता का सिद्धांत आध्यात्मिक-ईश्वरवादी आधार रखता है।

इसी प्रकार, स्टोइक दर्शन (जैसे एपिक्टेटस और मार्कस ऑरेलियस के विचार) में भी "जो हमारे नियंत्रण में है" (कर्म) और "जो नियंत्रण में नहीं है" (परिणाम) के बीच भेद करने की शिक्षा दी जाती है, जो गीता के फलासक्ति-त्याग सिद्धांत से गहरा साम्य रखती है। यह तुलना दर्शाती है कि यद्यपि गीता का दार्शनिक संदर्भ भारतीय है, किंतु उसके नैतिक सिद्धांत सार्वभौमिक मानवीय अनुभव से जुड़े हैं।

१२. आधुनिक प्रासंगिकता

आधुनिक युग में निष्काम कर्मयोग की प्रासंगिकता निरंतर विषय रही है। जैसा एक हालिया अध्ययन बताता है — भगवद्गीता अर्जुन के विषाद और कर्तव्य-विमूढता के माध्यम से मानव जीवन की जटिल समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती है, और जीवन के प्रत्येक संघर्ष का साहसपूर्वक सामना करने की शक्ति प्रदान करती है।

१२.१ कॉर्पोरेट प्रबंधन में कर्मयोग

कॉर्पोरेट प्रबंधन, मानसिक स्वास्थ्य और तनाव-प्रबंधन के क्षेत्रों में आज कर्मयोग के सिद्धांतों — विशेषतः "फल की चिंता किए बिना कर्तव्य-निर्वहन" — का व्यापक अनुप्रयोग देखा जा रहा है। अनेक प्रबंधन-प्रशिक्षण कार्यक्रम गीता के नेतृत्व-दर्शन (विशेषकर लोकसंग्रह की अवधारणा) को कॉर्पोरेट नेतृत्व-प्रशिक्षण में सम्मिलित करते हैं, जिसमें कार्यकुशलता, निर्णय-क्षमता और तनाव-प्रबंधन को कर्मयोग के सिद्धांतों से जोड़ा जाता है।

१२.२ मानसिक स्वास्थ्य और मनोचिकित्सा

गीता के त्रिगुण-सिद्धांत और समत्व-बुद्धि की अवधारणा को समकालीन मनोचिकित्सा में तनाव-प्रबंधन तथा भावनात्मक नियमन (Emotional Regulation) के संदर्भ में प्रासंगिक माना गया है। जैसा पूर्व उल्लेखित शोध में बताया गया है, गीता मनुष्य के मनःसंस्थान की व्याख्या करने वाला सर्वांगपूर्ण ग्रंथ है, जिसकी प्रासंगिकता वर्तमान तनावग्रस्त युग में निरंतर बढ़ रही है।

१२.३ शिक्षा और चरित्र-निर्माण

आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में मूल्य-शिक्षा (Value Education) के अंतर्गत भी कर्मयोग के सिद्धांतों को सम्मिलित करने के प्रयास हुए हैं, विशेषकर स्वधर्म-पालन, कर्तव्य-निष्ठा और समत्व-बुद्धि जैसी अवधारणाओं के माध्यम से युवाओं में उद्देश्य-बोध (Sense of Purpose) और नैतिक दृढ़ता विकसित करने के संदर्भ में।

१३. संभावित आलोचनाएँ और उनका प्रत्युत्तर

कर्मयोग सिद्धांत की कुछ आलोचनाएँ भी हुई हैं, जिनका संक्षिप्त उल्लेख आवश्यक है:

आलोचना १: स्वधर्म की सामाजिक व्याख्या। कुछ आलोचक स्वधर्म की अवधारणा को परंपरागत वर्ण-व्यवस्था से जोड़कर इसे सामाजिक असमानता के औचित्य-स्थापन के रूप में देखते हैं। इसका प्रत्युत्तर यह दिया जाता है कि गीता में स्वयं गुण-कर्म-विभाग की बात कही गई है (४.१३), जो जन्म के बजाय स्वभाव और कर्म पर आधारित वर्गीकरण की ओर संकेत करता है, तथा अनेक आधुनिक व्याख्याकार इसे व्यक्ति-केंद्रित स्वभाव-अनुरूप कर्तव्य-चयन के रूप में पुनर्व्याख्यायित करते हैं।

आलोचना २: युद्ध का औचित्य-स्थापन। कुछ आलोचक यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या गीता हिंसा और युद्ध को धार्मिक वैधता प्रदान करती है। इसका उत्तर यह है कि गीता का संदर्भ विशिष्ट (क्षत्रिय-धर्म, धर्मयुद्ध) है, तथा इसका मूल संदेश हिंसा नहीं, अपितु कर्तव्य-निर्वहन में निष्काम-भाव है — यही कारण है कि गांधी जैसे अहिंसा के अग्रदूत ने भी गीता को अपने जीवन-दर्शन का आधार बनाया, गीता को उन्होंने प्रतीकात्मक (allegorical) रूप में आंतरिक द्वंद्व के समाधान के रूप में व्याख्यायित किया।

आलोचना ३: निष्क्रियता का जोखिम कुछ विद्वान यह तर्क देते हैं कि "फल की चिंता मत करो" का सिद्धांत यदि गलत ढंग से समझा जाए, तो यह उत्तरदायित्व-हीनता और लापरवाही को प्रोत्साहित कर सकता है। किंतु गीता स्वयं स्पष्ट करती है कि कर्म पर पूर्ण अधिकार और निष्ठा आवश्यक है (कर्मण्येवाधिकारस्ते) — केवल फल की आसक्ति त्याज्य है, कर्म की उत्कृष्टता नहीं। अतः यह सिद्धांत निष्क्रियता का नहीं, अपितु उत्कृष्ट, तल्लीन और चिंता-मुक्त कर्म का समर्थक है।

१४. निष्कर्ष

भगवद्गीता का कर्मयोग सिद्धांत कर्म-त्याग नहीं अपितु फलासक्ति-त्याग की शिक्षा देता है। यह समत्व-बुद्धि, स्वधर्म-पालन, त्रिगुण-विवेक, स्थितप्रज्ञता, यज्ञ-भावना और ज्ञान-भक्ति के समन्वय से पूर्ण होने वाला बहुआयामी दर्शन है। तिलक, विवेकानंद, गांधी, राधाकृष्णन और योगानंद जैसे विचारकों की विविध व्याख्याएँ इस बात का प्रमाण हैं कि कर्मयोग एक स्थिर, एकरेखीय सिद्धांत नहीं, अपितु एक जीवंत दार्शनिक परंपरा है, जो प्रत्येक युग में नई प्रासंगिकता ग्रहण करती रही है — कभी राष्ट्रीय स्वतंत्रता-आंदोलन के प्रेरणा-स्रोत के रूप में, तो कभी आधुनिक प्रबंधन और मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में।

आधुनिक तनावग्रस्त और प्रतिस्पर्धात्मक जीवन में यह सिद्धांत मनुष्य को कर्तव्य-निष्ठ रहते हुए मानसिक शांति प्राप्त करने का मार्ग दिखाता है। अतः कहा जा सकता है कि गीता का कर्मयोग केवल प्राचीन युद्धभूमि का उपदेश नहीं, अपितु सार्वकालिक जीवन-प्रबंधन-सूत्र है, जो व्यक्ति को न तो पलायनवादी संन्यास की ओर धकेलता है, न ही अंधाधुंध, चिंताग्रस्त कर्म-प्रवृत्ति की ओर, अपितु इन दोनों अतियों के मध्य एक संतुलित, समत्वपूर्ण और आध्यात्मिक रूप से समृद्ध जीवन-पद्धति प्रस्तुत करता है।

संदर्भ सूची

- वर्णेकर, वं. (2022). कर्म का अनुसन्धान — विवेचन सारांश, अध्याय ४: ज्ञानकर्मसंन्यासयोग। LearnGeeta Vivechan Series। <https://vivechan.learngeeta.com/vivechan-page/9866/>
- शोधकर्ता (2017)। श्रीमद्भगवद्गीता में तनाव प्रबंधन। ResearchGate। <https://www.researchgate.net/publication/339379788>
- शोधकर्ता (2023)। कर्मयोग की अवधारणा एवं प्रारूप का विवेचनात्मक अध्ययन। ResearchGate। <https://www.researchgate.net/publication/378941211>
- दैनिक ट्रिब्यून (2023)। ज्ञान-भक्ति युक्त कर्मयोग [पुस्तक समीक्षा: सत्यव्रत बेंजवाल, सरल-गीता]। <https://www.dainiktribuneonline.com/news/sahitya/karmayoga-with-knowledge-and-devotion/>
- लेखक (2026)। निष्काम कर्मयोग की दार्शनिक अवधारणा और आधुनिक प्रासंगिकता: एक अध्ययन। Divyayatan — A Journal of Lakulish Yoga University। <https://divyayatan.lyu.ac.in/index.php/divyayatan/article/view/111>
- तिलक, बा. गं. (1915)। श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य (गीता रहस्य / कर्मयोग-शास्त्र)। पूना: केसरी प्रेस।
- राधाकृष्णन, स. (1948)। द भगवद्गीता (अनुवाद व भाष्य सहित)। लंदन: जॉर्ज एलेन एंड अनविन।
- व्यास, कृ. द्वै. (रचनाकाल अज्ञात)। श्रीमद्भगवद्गीता। गीता प्रेस, गोरखपुर।
- गांधी, मो. क. (1926, प्रकाशन बाद में)। अनासक्ति योग (गीता पर गुजराती प्रवचनों का अंग्रेजी संकलन)। साबरमती आश्रम प्रवचन-श्रृंखला।
- बेताई, आर. एस. (2002)। गीता एंड गांधीजी। दिल्ली: ज्ञान पब्लिशिंग हाउस। ISBN 9788121207997
- तिवारी, अरुण (2018)। ए मॉडर्न इंटरप्रिटेशन ऑफ लोकमान्य तिलकस गीता रहस्या।



थाती शोध पत्रिका

अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिक सहकर्म-समीक्षित, ओपन एक्सेस शोध पत्रिका

ISSN(O) : 2584-2722

वर्ष 1, अंक 3, अप्रैल - जून 2024

Online Available : <https://thati.net/>

12. अय्यर, जी. शंकरसुब्बा। सेल्फलेस एक्शन — कम्पाइलेशन एंड क्रिटिकल एनालिसिस। मुंबई: भारतीय विद्या भवन, 2018। ISBN 9788172764869
13. विकिपीडिया योगदानकर्ता। "Karma Yoga (Bhagavad Gita)"। [https://en.wikipedia.org/wiki/Karma_Yoga_\(Bhagavad_Gita\)](https://en.wikipedia.org/wiki/Karma_Yoga_(Bhagavad_Gita))
14. विकिपीडिया योगदानकर्ता। "Nishkama Karma"। https://en.wikipedia.org/wiki/Nishkama_Karma
15. विकिपीडिया योगदानकर्ता। "Shrimad Bhagavad Gita Rahasya"। https://en.wikipedia.org/wiki/Shrimad_Bhagavad_Gita_Rahasya